जल्द ही चढ़ना शुरू होंगे और चढ़ते जाएंगे पेट्रोल-डीजल के दाम

अनिल जैन

देश में जब-जब भी पेट्रोल और डीजल के दाम बढ़ते हैं और जनता में हाहाकार मचता है तो सरकार के मंत्री और भारतीय जनता पार्टी के तमाम नेता संसद समेत हर मंच पर यह मिथकीय कथा बांचने लगते हैं कि पेट्रोल और डीजल के खुदरा दाम पेट्रोलियम कंपनियां तय करती हैं और सरकार का इससे कोई लेना-देना नहीं है। कोई-कोई मंत्री और भाजपा प्रवक्ता तो बेशर्मी या मूर्खतावश इसके लिए आठ साल पहले सत्ता से बाहर हो चुकी यूपीए सरकार को भी जिम्मेदार ठहरा देते हैं। लेकिन जब कभी पेट्रोल-डीजल के दामों में थोड़ी सी भी कमी होती है तो तमाम मंत्री और भाजपा नेता उसका श्रेय सरकार को देने लगते हैं। इस काम में सरकार के ढिंढोरची की भूमिका निभाने वाला मीडिया भी शामिल रहता है और वह भी बढ़-चढ़ कर सरकार की जय-जयकार करता है। पिछले दिनों पेट्रोल-डीजल के दामों में कमी के लिए उत्पाद शुल्क में जो कटौती की है, उसको लेकर भी यही हो रहा है।

पिछले छह महीने में पेट्रोल-डीजल पर उत्पाद शुल्क में यह दूसरी कटौती है। पहली कटौती पिछले साल नवंबर के पहले हफ्ते में हुई थी, जब केंद्र सरकार ने पेट्रोल पर पांच रुपए और डीजल पर 10 रुपए उत्पाद शुल्क घटाया था। उससे जो राहत लोगों को मिली थी, वह साढ़े चार महीने तक रही थी। हालांकि नवंबर-दिसंबर में जब कीमतों का बढ़ना रुका था, तब अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत कम हो रही थी और एक समय यह कम होकर 63 डॉलर प्रति बैरल हो गई थी। सो, कीमतें नहीं बढ़ने की वजह समझ में आ रही थी। लेकिन मार्च में इसकी कीमत एक सौ डॉलर प्रति बैरल होने की ओर बढ़ रही थी और यूक्रेन में रूस के सेना भेजने के साथ ही 99 डॉलर प्रति बैरल हो गई थी। इसके बावजूद कीमतें नहीं बढ़ीं।

नवंबर के आखिरी हफ्ते में कटौती हुई थी और जनवरी में उत्तर प्रदेश सहित पांच राज्यों के विधानसभा चुनावों की घोषणा हुई थी। उससे पहले पेट्रोल-डीजल के दाम तीन नवंबर को बढ़ाए गए थे। उस समय भी कच्चे तेल की कीमत 85 डॉलर प्रति बैरल थी। लेकिन उसके बाद अचानक दोनों ईंधनों की कीमतों में बढ़ोत्तरी का सिलसिला थम गया। उसके बाद केंद्र सरकार ने डीजल पर उत्पाद शुल्क में 10 रुपए और पेट्रोल पर पांच रुपए प्रति लीटर की कटौती की।

सरकार का कटौती करना समझ में आता हैं, क्योंकि उसने इस शुल्क में अनाप-शनाप बढ़ोत्तरी की थी, इसलिए जाहिर है कि चुनावों को ध्यान में रखते हुए पेट्रोल-डीजल के दाम घटाए गए थे। लेकिन सवाल है कि कथित तौर पर हर दिन कीमत तय करने वाली पेट्रोलियम मार्केटिंग कंपनियों ने भी चुनाव प्रक्रिया पूरी होने तक कीमतें किस तर्क से स्थिर रखी?

पांचों राज्यों के चुनाव नतीजे 10 मार्च को आए थे। उसके बाद 12 दिन बाद तक कीमतें स्थिर रहीं और फिर 22 मार्च से उनमें बढ़ोत्तरी शुरू हुई। जाहिर है यह सिर्फ भ्रम है कि कीमतें बाजार के हिसाब से तय होती हैं। हकीकत यह है कि कीमतें राजनीति के हिसाब से तय होती हैं। पांच राज्यों में चुनाव होने थे तो सरकार के कहने पर कीमतें स्थिर रखी गईं। ऐसे ही पिछले साल मार्च से मई के पहले हफ्ते तक भी पांच राज्यों के चुनाव के कारण कीमतें नहीं बढ़ी थीं। उस समय पश्चिम बंगाल, असम, तमिलनाडु, केरल और पुदुचेरी में विधानसभा के चुनाव हो रहे थे।

जाहिर है कि पेट्रोल-डीजल के खुदरा दामों में कटौती केंद्र सरकार अपने राजनीतिक नफा-नुकसान को ध्यान में रख कर करती है और जब दाम बढ़ने लगते हैं तो उसके लिए पेट्रोलियम कंपनी पर जिम्मेदारी डाल देती है या फिर राज्य सरकारों पर। कभी-कभी तो सरकार के मंत्री यूपीए सरकार को भी जिम्मेदार ठहराने से नहीं चूकते। पिछले साल जब पेट्रोल के दाम 100 रुपए के करीब पहुंच गए थे तब पेट्रोलियम मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान ने संसद में कहा था कि इसके लिए कांग्रेस और यूपीए सरकार की नीतियां जिम्मेदार हैं।

इसी तरह अभी अप्रैल महीने में जब पेट्रोल-डीजल के खुदरा दाम रोज छलांग लगा रहे थे, उसी दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मुख्यमंत्रियों की एक बैठक आयोजित की थी। बैठक कोरोना को लेकर थी लेकिन उसमें प्रधानमंत्री ने पेट्रोल-डीजल के बढ़ते दामों का जिक्र छेड़ दिया। उन्होंने दाम बढ़ने के लिए पहले तो रूस-यूक्रेन युद्ध को जिम्मेदार बताया और फिर अपनी आदत के मुताबिक ओछा राजनीतिक पैंतरा अपनाते हुए गेंद विपक्षी मुख्यमंत्रियों के पाले में डाल दी। उन्होंने कहा कि विपक्षी मुख्यमंत्रियों को चाहिए कि वे जनता को राहत देने के लिए पेट्रोल-डीजल पर वैट की दरें कम करें, जैसे कि केंद्र सरकार ने नवंबर महीने में उत्पाद शुल्क घटाया था। यह कहते हुए उन्हें भाजपा शासित किसी भी प्रदेश की याद नहीं आई जहां उस समय भी पेट्रोल के दाम 105 से लेकर 112 रुपए लीटर मिल रहा था।

बीते नवंबर में केंद्र सरकार ने पेट्रोल पर पांच रुपया उत्पाद शुल्क कम किया था और 22 मार्च से शुरू हुई बढ़ोत्तरी के बाद दो हफ्ते में कीमत 10 रुपए 40 पैसे प्रति लीटर बढ़ गई। यानी सरकार ने जितना घटाया उसका दोगुना सरकारी पेट्रोलियम कंपनियों ने बढ़ा दिया। यह हाथ को पीछे से घुमा कर नाक पकड़ने का तरीका है। इसीलिए अब सवाल है कि इस बार जो राहत मिली है वह कब तक रहेगी? यह सवाल इसलिए भी अहम है क्योंकि अगले चार-पांच महीने तक कोई चुनाव नहीं होना है। गुजरात और हिमाचल प्रदेश में विधानसभा के चुनाव आगामी नवंबर-दिसंबर में होंगे।

बहरहाल, सरकार का चाल-चलन देखते हुए यह मुमकिन नहीं है कि पेट्रोल-डीजल के दाम अभी कम किए गए हैं तो अगले छह महीने यानी नवंबर-दिसंबर तक कम रहेंगे। अब भी रूस-यूक्रेन का युद्ध चल रहा है और तेल उत्पादक देश तेल का उत्पादन बढ़ा नहीं रहे हैं। इस बीच खबर है कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत में एक बार फिर से बढ़ोत्तरी शुरू हो गई है। लेकिन भारत की सरकारी पेट्रोलियम विपणन कंपनियां अभी शांत बैठी हैं, यानी उन्होंने पेट्रोल और डीजल की खुदरा कीमतों में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की है। पिछले दो हफ्ते में कच्चे तेल का दाम बढ़ते-बढ़ते 117 डॉलर प्रति बैरल को पार गया है और आगे भी बढ़ते रहने के ही आसार दिख रहे हैं। इसलिए यह तय है कि जैसे-जैसे कच्चे तेल के दाम बढ़ेंगे, वैसे-वैसे कंपनियों पर पेट्रोल-डीजल खुदरा दाम बढ़ाने का दबाव बढ़ेगा। माना जा रहा है कि पेट्रोलिय कंपनियां जल्दी ही अपना खेल फिर शुरू कर सकती हैं यानी 25 से 50 पैसे प्रति लीटर रोजाना की बढ़ोत्तरी का खेल, जो कि वह थोड़े दिन पहले तक नियमित रूप से खेल रही थीं।

इसलिए अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल के दाम में हो रही बढ़ोत्तरी को देखते हुए संभव है कि सरकार ने जो लोगों को राहत देने की उदारता पिछले दिनों दिखाई है, वह एकाध महीने से ज्यादा न चले। अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल के दामों का बढ़ना जारी रहा तो खुदरा दाम भी बढ़ेंगे और उनके बढ़ने का सिलसिला अक्टूबर-नवंबर महीने तक चलेगा, जब तक कि गुजरात और हिमाचल प्रदेश के विधानसभा चुनाव की तारीखों का ऐलान नहीं हो जाता। लेकिन जब तक खुदरा दाम बढ़ने का सिलसिला शुरू नहीं होता तब तक यह प्रचार तो जोर-शोर से चलता ही रहेगा कि केंद्र सरकार ने पेट्रोल-डीजल पर उत्पाद शुल्क घटा कर लोगों को बड़ी राहत दी है। यह सोचने वाली बात है कि देश के लोगों की कंडिशनिंग कैसी हो गई है कि उत्पाद शुल्क में कटौती के बाद भी देश के कई राज्यों में पेट्रोल के दाम अब भी एक सौ रुपए लीटर से ज्यादा है फिर भी कहा जा रहा है कि पेट्रोल सस्ता हो गया। जब कीमत 70 रुपए लीटर थी तो एक रुपया बढ़ने पर कहा जाने लगता था कि पेट्रोल महंगा हो गया है, लेकिन अब 120 रुपए लीटर से साढ़े नौ रुपया कम होने पर कहा जा रहा कि पेट्रोल सस्ता हो गया है!

मौजूदा समय में नहीं लड़ी जा सकती हैं अतीत की लड़ाइयां

राम पुनियानी

ज्ञानवापी मस्जिद में पूजा करने के अधिकार की मांग करते हुए पांच महिलाओं द्वारा अदालत में प्रकरण दायर करने के बाद से पूरे देश में अतीत से जुड़े कई मुद्दे और विवाद सार्वजनिक विमर्श के केन्द्र में आ गए हैं। इस दावे के बाद कि ज्ञानवापी मस्जिद का निर्माण काशी विश्वनाथ मंदिर को गिराकर किया गया था, अब मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि का मसला उठाया जा रहा है। ताजमहल, कुतुब मीनार, जामा मस्जिद और मुस्लिम राजाओं द्वारा निर्मित हर इमारत के बारे में नई-नई बातें कही जा रही हैं। तर्क यह दिया जा रहा है कि अयोध्या की तरह जिन-जिन स्थानों पर हिन्दू धार्मिक स्थलों को मुसलमानों द्वारा तोड़ा गया था, उनका स्वरूप बदला गया था अथवा उन पर कब्जा किया गया था, को हिन्दुओं को वापस दिलवाया जाए।

यह तर्क भी सुनाई दे रहा है कि अतीत को नजरअंदाज करके भविष्य का निर्माण नहीं किया जा सकता। यह भी कहा जा रहा है कि धर्मनिरपेक्षता, भारत जैसे देश के लिए उपयुक्त नीति नहीं है क्योंकि हमें धर्मनिरपेक्षता से ज्यादा सत्य और न्याय की जरूरत है। यह भी कहा जा रहा है कि अतीत को मृत नहीं माना जा सकता और यह भी कि उपासना स्थल अधिनियम 1991 में 15 अगस्त 1947 की कट ऑफ तारीख पीड़ितों (हिन्दुओं) के साथ विचार-विमर्श के बगैर निर्धारित की गई है। ऐसा लग रहा है कि यह सब 6 दिसंबर 1992 के वाराणसी में रीप्ले की तैयारी का हिस्सा है।

ऊपर उल्लेखित तर्कों में से कोई भी भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सिद्धांतों और मूल्यों, भारतीय संविधान के प्रावधानों और अतीत की तार्किक समझ से मेल नहीं खाते। उपासना स्थल अधिनियम की निंदा की जा रही है और उसे मनमाना बताया जा रहा है। भारत का लंबा इतिहास है परंतु "उसने हमारा धर्मस्थल तोड़ा था तो हम उसका धर्मस्थल तोड़ेंगे" की विचारधारा कुछ दशक पुरानी ही है। इस सोच को दक्षिणपंथियों द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा है। भारतीय इतिहास का मध्यकाल, जिसमें अनेक मुस्लिम राजाओं ने देश पर शासन किया, को हिन्दुओं के दमन और उन पर अत्याचारों का काल बताया जा रहा है।

हिन्दू बनाम मुसलमान प्रतिद्वंद्विता को इस तरह प्रचारित किया जा रहा है मानो ये दोनों समुदाय हमेशा से एक-दूसरे के खून के प्यासे रहे हों। देश का सबसे शक्तिशाली राजनैतिक संगठन और उससे जुड़े समूह अनवरत प्रचार द्वारा लोगों को यह समझाने में सफल रहे हैं कि मुस्लिम राजा इस्लामिक श्रेष्ठतावादी थे, जिन्होंने हिन्दुओं के मंदिर तोड़े और उन्हें जबरन मुसलमान बनाया। इस नकली आख्यान के चलते देश की असली समस्याओं पर चर्चा नहीं हो रही है।

भारत पर जिन मुस्लिम राजाओं ने शासन किया वे न तो इस्लाम का प्रसार करने भारत आए थे और ना ही उनका लक्ष्य उनके धर्म की श्रेष्ठता को स्थापित करना था। राजा, चाहे वे मुस्लिम हों या हिन्दू, शक्तिशाली जमींदारों के सहारे राज करते थे। चाहे अकबर हों या औरंगजेब, उन सभी के शासन का ढांचा अलग-अलग धर्मों के नवाबों, जमींदारों और सिपहसालारों पर टिका हुआ था। साम्राज्यों का आधार धर्म नहीं था। साम्राज्यों का आधार सामंती व्यवस्था थी। अकबर के प्रमुख सिपहसालारों में बीरबल, टोडरमल और मानसिंह शामिल थे। औरंगजेब के कम से कम एक-तिहाई दरबारी हिन्दू थे।

युद्धों का आधार भी धर्म नहीं हुआ करता था। शिवाजी ने शुरूआती लड़ाईयां चन्द्रसिंह मोरे से लड़ीं। सिक्ख गुरूओं और हिन्दू राजाओं में जमकर टकराव हुए। धार्मिक स्थलों के ध्वंस के पीछे कई कारण थे। इनमें शामिल थे संपत्ति, प्रतिद्वंद्विता और विद्रोहियों का इन स्थलों में शरण लेना।

भारतीय संस्कृति अलग-अलग धर्मों के मानने वालों की संस्कृति का मिश्रण है, जिनमें हिन्दू और मुसलमान मुख्य हैं। इस्लाम राजाओं और नवाबों के जरिए नहीं फैला यद्यपि कई राजा पराजित शासकों से इस्लाम कुबूल करने की शर्त रखते थे। बड़े पैमाने पर धर्मपरिवर्तन जातिगत दमन का नतीजा था।

यह मानना कि मुसलमानों ने हिन्दुओं का दमन किया, इतिहास की गलत समझ पर आधारित है। दरअसल गरीबों, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, का दोनों धर्मों के जमींदारों ने शोषण किया। इसके अलावा जातिप्रथा के कारण भी नीची जातियों के हिन्दुओं को घोर दमन और शोषण का सामना करना पड़ा। डॉ. अंबेडकर भारत के इतिहास को इसी रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि देश में बौद्ध धर्म का उदय एक क्रांति थी क्योंकि उसने जातिप्रथा की चूलें हिला दीं। इसके बाद के काल में प्रतिक्रांति हुई जिसमें बौद्धों और उनके धर्मस्थलों पर बड़े पमाने पर हमले हुए।

भारतीय समाज में यदि किन्हीं दो वर्गों के हित आपस में टकराते हैं तो वे हैं वर्चस्ववादी ऊँची जातियों के हिन्दू और अछूत (जिन्हें बाद में दलित कहा गया)। बौद्धों पर हमले के पीछे भी विचारधारात्मक कारण थे। पुष्यमित्र शुंग ने तो यह घोषणा की थी कि जो भी उसके पास बौद्ध भिक्षुक का कटा हुआ सिर लाएगा उसे वह सोने की एक मुहर ईनाम में देगा। अंततः बौद्ध धर्म का उसकी जन्मभूमि से ही सफाया कर दिया गया। आजादी के आंदोलन के दौरान हमारे नेतृत्व को इस बात का अच्छी तरह से एहसास था कि भारतीयों के असली शोषक और दमनकर्ता औपनिवेशिक ब्रिटिश हैं। इसलिए उन्होंने अपनी ऊर्जा ब्रिटिश शासन के पांव उखाड़ने पर केन्द्रित की। इस दौरान भी ऊँची जातियों के वर्चस्ववादी तबके ने स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने से इंकार कर दिया। यह वर्ग 'विदेशी' मुसलमानों को अपना असली शत्रु मानता था और हिन्दू राष्ट्र की स्थापना करना चाहता था। यही कारण है कि इस वर्ग को धर्मनिरपेक्षता एक 'पश्चिमी' और 'विदेशी' अवधारणा लगती है और वह इसके खिलाफ है। यह वर्ग राजाओं के युग की वापसी चाहता है जिसमें राजा और जमींदार धर्म के नाम पर गरीबों का खून चूसें।

भारत में जमींदार-पुरोहित गठबंधन की आधुनिकता या आधुनिक राष्ट्र-राज्य के निर्माण में कोई रूचि नहीं है। धर्मनिरपेक्षता एक सार्वभौमिक मूल्य है जिसका पालनकर्ता राज्य अपने नागरिकों को, चाहे वे किसी भी धर्म के क्यों न हों, एक निगाह से देखता है। परंतु इमारतों को ढहाने की परियोजना के संचालकों और अतीत को धरती से खोद निकालने के इच्छुक राष्ट्रवादियों को न तो बहुवाद से मतलब है और ना ही धर्मनिरपेक्षता से। उन्हें अतीत में हुए बौद्ध और जैन आराधना स्थलों के ध्वंस से भी कोई लेना-देना नहीं है। वे तो बस कुछ चुनिंदा मसले पकड़ लेते हैं और उनका ही ढोल पीटते रहते हैं।

सैकड़ों साल पहले घटी घटनाओं के लिए आज के मुसलमानों को कठघरे में खड़ा किया जा रहा है। इस तरह की विघटनकारी विचारधारा से देश में नफरत और हिंसा फैल रही है और समाज का धार्मिक आधार पर ध्रुवीकरण हो रहा है।

विघटनकारी विचारधारा के पैरोकार उपासना स्थल अधिनियम की तुलना कृषि कानूनों से कर रहे हैं। यह अधिनियम इसलिए बनाया गया था ताकि देश की साझा विरासत को सुरक्षित रखते हुए समाज की ऊर्जा का इस्तेमाल भविष्य के निर्माण के लिए किया जा सके। हमारी गंगा-जमुनी तहजीब भी बनी रहे और हम एक उन्नत राष्ट्र भी बन सकें। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली में कहा है "तुलसी सरनाम गुलाम हौं राम कौए जाको रुचै सो कहै सब कोऊए मांग के खइबे, मसीत में सोइबे, न लेबे को एकए न देबे को दोऊ"।